षष्ठम् अध्याय

बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का तुलनात्मक विवेचन

भारत के नैतिक व सांस्कृतिक परिवेश के निर्माण में बौद्ध एवं जैन दर्शनों का मौलिक योगदान रहा है । ये दोनों दर्शन आज भी जीवन्त परम्पराओं के रूप में भारतीय एवं अन्य देशों के जन-जीवन पर अपना प्रभाव बनाए हुए हैं । बौद्ध एवं जैन दर्शनों की प्रवृत्ति श्रमण प्रधान रही है । बौद्ध एवं जैन दर्शनों ने समन्वित रूप से भारतीय आचार परम्परा की पृष्ठभूमि तैयार की है । समय के साथ-साथ इनके बाह्य रूप में अनेक परिवर्तन होते रहें किन्तु फिर भी इनकी मौलिक पृष्ठभूमि बहुत कुछ वैसी ही बनी रही । बौद्ध एवं जैन दर्शन दोनों ही एक-दूसरे से आन्तरिक रूप से बहुत निकट प्रतीत होते हैं । इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इन दोनों दर्शनों का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाए । इस अध्याय में बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है साथ ही अन्य भारतीय दर्शनों व विचारकों से भी तुलना करने का एक छोटा-सा प्रयास किया गया है ।

6.1 बौद्ध एवं जैन दर्शनों के दार्शनिक दृष्टिकोणों का तुलनात्मक विवेचन

बौद्ध एवं जैन दर्शनों का उद्‌भव लगभग एक साथ ही हुआ । दोनों दर्शनों के संस्थापकों का जन्म भी राजपरिवार में ही हुआ था । दोनों ने ही यथार्थ सत्य को जानने के लिए गृहत्याग किया तथा कठोर तपस्या व साधना की । दोनों दर्शनों का अंतिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति ही था तथा कुछ सिद्धान्तों में भी साम्यता देखने को मिलती है जिनकी चर्चा बाद में की जाएगी । इन साम्यताओं के कारण कुछ समीक्षकों ने सम्पूर्ण जैन-दर्शन को बौद्ध-दर्शन के विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में स्वीकार किया है, जबकि वास्तविक रूप में दोनों की चिंतनधारा भिन्न-भिन्न है ।[1] इन दोनों दर्शनों में साम्यता का कारण उनके उद्‌भव का परिवेश व तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियां हैं जो आकस्मिक नहीं परिवेशजन्य थी । बौद्ध एवं जैन दर्शनों में समरूपता के साथ उसी अनुपात में विषमता भी देखने को मिलती है जो इस प्रकार है -

महात्मा बुद्ध का जन्म 567 ई० पूर्व कपिलवस्तु नामक स्थान पर शाक्य वंश में हुआ जबकि वर्धमान महावीर का जन्म 599 ई० पू० में वैशाली नामक स्थान पर ज्ञातृक नामक वंश में हुआ ।[2] महात्मा बुद्ध को 6 वर्ष की साधना उपरांत बुद्धत्व की प्राप्ति हुई[3] जबकि वर्धमान महावीर को 12 वर्ष की कठोर तपस्या के पश्चात् कैवल्य की प्राप्ति हुई ।[4] महात्मा बुद्ध को 80 वर्ष की आयु में 488 ई० पू० महापरिनिर्वाण प्राप्त

हुआ जबकि वर्धमान महावीर ने 72 वर्ष की आयु में 527 ई० पूर्व में शरीर का त्याग किया ।[5]

बौद्ध एवं जैन दर्शनों में दर्शन सम्बन्धी विषमता भी देखने को मिलती है । बौद्ध-दर्शन आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करता जबकि जैन-दर्शन जीववादी है । जैन-दर्शन में जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष के नौ तत्त्व माने हैं । जीव और अजीव के अतिरिक्त शेष तत्त्व नैतिक प्रकृति के हैं[6] जबकि बौद्ध-दर्शन की तत्त्व योजना में चार आर्यसत्यों एवं चार परमार्थों का विवेचन किया गया है । चार आर्यसत्य (क) दुःख, (ख) दुःख का कारण, (ग) दुःख निरोध (घ) दुःख निरोध का मार्ग । चार परमार्थ चित्त, चैत्तसिक, रूप और निर्वाण हैं। बौद्ध-दर्शन के चार आर्यसत्य पूर्णतः नैतिक जीवन की प्रक्रिया से सम्बद्ध हैं। यदि चार आर्यसत्यों व परमार्थ पर सम्मिलित रूप से विचार किया जाए तो दुःख निरोध व निर्वाण एक ही हैं तथा चैत्तसिक का चित्त में अन्तर्भाव हो जाता है तो बौद्ध-दर्शन में छः प्रत्यय शेष बचते हैं जो चित्त, रूप, दुःख, दुःखहेतु, दुःखनिरोध व दुःख निरोध का मार्ग हैं ।[7]

बौद्ध एवं जैन दर्शनों के तत्त्वों की तुलनात्मक तालिका :

बौद्ध	**जैन**
नाम (चित्त)	जीव
रूप	अजीव
दुःख	बन्धन

दु:खहेतु (प्रतीत्यसमुत्पाद)	आश्रव
दु:ख निरोध का मार्ग	संवर
वही	निर्जरा
दु:ख निरोध (निर्वाण)	कैवल्य

बौद्ध-दर्शन में मोक्ष प्राप्ति हेतु ध्यान (चित्त निरोध) को अधिक महत्त्व दिया गया है जबकि जैन-दर्शन में तप पर बल दिया गया है । जैन-दर्शन में कठोर तपस्या को मोक्ष प्राप्ति हेतु सहायक माना है इसके विपरीत बौद्ध-दर्शन में दोनों अतिमार्गों को छोड़ते हुए मध्यम-मार्ग को अधिक संगतपूर्ण माना है ।[8] जैन-दर्शन में सप्तभंगी न्याय अर्थात् स्याद्वाद का प्रमुख रूप से विवेचन किया गया है जबकि बौद्ध-दर्शन में स्याद्वाद का कोई स्थान नहीं है । बौद्ध-दर्शन में प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण स्थान है, परन्तु जैन-दर्शन में इस तरह की कोई कल्पना नहीं की गई । बौद्ध-दर्शन पञ्चस्कन्ध स्वीकार करता है जबकि जैन-दर्शन स्कन्धवाद का खण्डन करता है तथा अणु-सिद्धान्त को स्वीकार करता है। जैन-दर्शन का मानना है कि समस्त दृश्यमान जगत् अणु से निर्मित हैं । इसके विपरित बौद्ध-दर्शन केवल विज्ञान को ही सत्य मानता है ।[9] बौद्ध एवं जैन दर्शनों में वैचारिक मतभेदों के चलते इन दर्शनों की अलग-अलग शाखाएँ बनी । बौद्ध-दर्शन में जो भारतीय दर्शन में महत्त्वपूर्ण हैं, चार शाखाएं हैं-1. वैभाषिक-बाह्य प्रत्यक्षवाद, 2. सौत्रान्तिक - बाह्यनुमेयवाद, 3. योगाचार-विज्ञानवाद, 4. माध्यमिक शून्यवाद, ।[10] जबकि जैन-दर्शन में

दो ही सम्प्रदाय बनें 1. श्वेताम्बर 2. दिगम्बर ।[11] बौद्ध-दर्शन में आष्टांगिक-मार्ग को मोक्ष प्राप्ति का मार्ग माना गया है जबकि जैन-दर्शन में त्रिरत्न की संकल्पना की गई है । उपर्युक्त दार्शनिक भिन्नताओं के अतिरिक्त दोनों दर्शनों में कुछ पक्षों में साम्यता भी दिखाई देती है । बौद्ध एवं जैन दोनों ही दर्शन ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हैं, दोनों ही दर्शन ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले पुरोहितों की संस्था को स्वीकार करते हैं । दोनों ही दर्शन किसी भी कार्य के लिए जीव हिंसा को पाप समझते हैं । दोनों ही दर्शन वेदों की प्रमाणिकता के प्रति उदासीन हैं । दोनों दर्शनों के संस्थापक एक ही प्रांत बिहार के निवासी रहें हैं तथा दोनों का जन्म राजपरिवार में हुआ । जैन-दर्शन के संस्थापक महावीर बुद्ध के समकालीन थे, दोनों दर्शनों ने अपने उपदेशों हेतु आम-जन की भाषा का प्रयोग किया। लेकिन उपर्युक्त साम्यताओं व विषमताओं के विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों दर्शन अलग-अलग हैं ।

6.2 बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का तुलनात्मक विवेचन

बौद्ध एवं जैन दर्शनों के उद्‌भव का मूलभूत आधार नैतिकता थी दोनों ही दर्शनों ने तत्त्वमीमांसा को अधिक महत्त्व न देते हुए आचारमीमांसा के आधार पर तत्त्वमीमांसा की योजना की है ।[12] दोनों दर्शनों ने तत्कालीन समाज में व्याप्त अन्याय व शोषण के विरोध में अपने मतों का प्रचार किया । दोनों दर्शनों का लक्ष्य एक ही था कि मानव को दु:खों से मुक्त

करना व मोक्ष या यथार्थ सत्य की प्राप्ति करना । दोनों दर्शनों में सदाचरण पर विस्तृत रूप में उल्लेख मिलता है । दोनों ही दर्शन सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य पर विशेष बल देते हैं, इसके साथ ही हिंसा, चोरी और असत्य भाषण को निन्दनीय व हीन कर्म मानते हैं । सांसारिक सुख के विषय में भी दोनों दर्शनों की समान मान्यता है ।[13] बौद्ध-दर्शन में वर्णित करूणा, मैत्री, मुदिता व उपेक्षा के सन्दर्भ में भी जैन-दर्शन बौद्ध-दर्शन के समान ही मत रखता है । दोनों ही दर्शन पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धान्त को समान रूप से स्वीकार करते हैं । दोनों दर्शनों में हिंसा के सिद्धान्त पर प्रमुखता से बल दिया गया है । दोनों दर्शन किसी जीव की हिंसा का विरोध करते हैं तथा प्रेम व करूणा के भावों को महत्त्व देते हैं ।

उपर्युक्त समानताओं के बावजूद भी दोनों दर्शनों का नीतिशास्त्र मात्रात्मक व गुणात्मक रूप से भिन्न-भिन्न है । दोनों दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्य बाहरी तौर पर एकसमान प्रतीत होते हैं लेकिन जब इनका सूक्ष्म अवलोकन किया जाता है तब ज्ञात होता है कि इनमें विभिन्नता भी विद्यमान है ।

बौद्ध-दर्शन का नीतिशास्त्र जैन-दर्शन की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक व सरल है । जैन-दर्शन का नीतिशास्त्र कठोर है । बौद्ध एवं जैन दर्शनों में सबसे अधिक विषमता अहिंसा के सन्दर्भ में है ।[14] जैन-दर्शन का अहिंसा का स्वरूप अन्य दर्शनों या बौद्ध-दर्शन से विशिष्ट है । जैन-दर्शन

में अहिंसा का अर्थ है सभी पदार्थों या जीवों के प्रति पूज्य बुद्धि एवं उन सभी पदार्थों के भोग का त्याग करना जिसमें जीव है । इस नियम की कट्टरता के कारण जैन-दर्शन में कुछ ऐसी विधियां प्रचलित हो गई जिनका अन्य दर्शनों या मतवादियों ने उपहास किया जैसे कुछ जैन-मत के अनुयायी चलने से पूर्व झाड़ू लगवाते हैं, मुख पर पट्टी डालते हैं, शहद आदि का त्याग करते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में महाभारत में कहा गया है कि इस संसार में इतने अधिक किस्म के जीव-जन्तु हैं जिनका हम आंखों से अवलोकन नहीं कर सकते अपितु अनुमान लगा सकते हैं, पलकों को झपकते समय भी जीवों के अंग टूट जाते हैं। भागवत पुराण में कहा गया है कि 'जीवन अन्य जीवन का प्राण है ।'[15] इस प्रकार यदि हम कट्टरता से अहिंसा का पालन करने का प्रयास भी करते हैं तो भी अनजाने में जीवों की हत्या होगी तथा सदैव मन में भय बना रहेगा । इसलिए सृष्टि के चक्र को नियमित रूप से गतिमान रखने के लिए कुछ जीवों की हिंसा अनिवार्य है । इस सन्दर्भ में बौद्ध-दर्शन अधिक व्यावहारिक है । बौद्ध-दर्शन के अनुसार सभी प्राणियों के प्रति प्रेम व करूणा भाव रखों, ऐसा कोई भी कर्म न करों जिससे दूसरे प्राणी को पीड़ा होती हो तथा किसी भी जीव की हत्या न करो ।[16] बौद्ध-दर्शन में कहीं भी इस तरह की परम्पराएं देखने को नहीं मिलती जो जैन-दर्शन में दिखाई देती हैं । बौद्ध-दर्शन किसी भी प्रकार की अति का निषेध करता है इसलिए यह अधिक व्यावहारिक है । बौद्ध-दर्शन में भारतीय समाज में प्रचलित जाति

प्रथा का विरोध किया गया है जबकि जैन-दर्शन जातिप्रथा को स्वीकार करता है । उनका मानना है कि जाति व्यवस्था मनुष्य के आचरण से सम्बन्धित है परन्तु जैन और बौद्ध दोनों ही दर्शन 'ब्राह्मण' शब्द को सम्माननीय पद मानते हैं । उनके अनुसार जो सभी प्रकार के कर्मों से मुक्त हो गया है वह ब्राह्मण है । जैन-दर्शन जाति व्यवस्था को कर्म के आधार पर तो उचित मानता है जबकि जन्मगत जाति व्यवस्था का विरोध करता है । जैन-दर्शन के इसी मत को बौद्ध-दर्शन भी स्वीकार करता है।[17]

बौद्ध एवं जैन दर्शन अपरिग्रह के सैद्धान्तिक पक्ष पर समान विचार रखते हैं परन्तु व्यावहारिक पक्ष में दोनों के मध्य मतभेद है । जैन-दर्शन में श्रमण जीवन के संदर्भ में पूर्ण परित्याग और गृहस्थ जीवन में परिग्रह-परिसीमन को स्वीकार किया गया है । जैन-दर्शन का मानना है कि पूर्णतः अनासक्ति का विकास करने के लिए व्यक्ति का बाह्य-जीवन भी अपरिग्रही होना चाहिए । इसी कारण जैन-दर्शन के दिगम्बर मत के अनुयायी वस्त्रों का भी परिग्रह नहीं करते जबकि बौद्ध-दर्शन में भिक्षु वर्ग के लिए स्वर्ण-रजत रूप के त्याग की बात कही गई है । बौद्ध-दर्शन में गृहस्थ के लिए परिग्रह परिसीमन पर कोई चर्चा नहीं की गई । बौद्ध-दर्शन में सम्यक् आजीविका की चर्चा की गई है परन्तु संग्रह के विषय में स्पष्ट रूप से कहीं वर्णन नहीं मिलता ।[18]

जैन-दर्शन के नैतिक पक्ष को साधारण दृष्टि से देखने पर हर कहीं निषेध का स्वर सुनाई देता है । जैन-दर्शन में हर जगह निषेधात्मक वाक्य जैसे हिंसा न करो, झूठ न बोलो, चोरी न करो, क्रोध न करो आदि । ऐसा प्रतीत होता है कि जैन-दर्शन केवल नहीं करने के लिए कहता है, करने के लिए कुछ नहीं कहता । इसी कारण सामान्य रूप से जैन-दर्शन निवृत्तिपरक दिखाई देता है । अमरमुनि जी ने जैन-दर्शन का बचाव करते हुए कहा कि 'यह सत्य है कि जैन-दर्शन में निवृत्ति को उच्चतम आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया गया है किन्तु यदि साफ दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो यह ज्ञात होगा कि इन निषेधात्मक सूत्रों की क्या उपयोगिता है। जैन-दर्शन के इस निषेध में भी विधेयकता निहित है ।[19] बौद्ध-दर्शन में भी जैन-दर्शन के समान निषेधात्मक नियमों का प्रतिपादन किया है परन्तु उनका नीतिशास्त्र पूर्णतः निषेधात्मक नहीं है । महात्मा बुद्ध ने गृहस्थ व भिक्षुओं के लिए विधेयात्मक कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया है तथा पारस्परिक सहयोग व लोक-मंगल जैसे कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है । बौद्ध एवं जैन दर्शनों का नीतिशास्त्र निषेधात्मक होने के साथ-साथ लोकहितकारी भी है ।[20] दोनों दर्शनों में त्रिविध साधना मार्ग प्रतिपादित किया गया है । बौद्ध-दर्शन का आष्टांगिक-मार्ग भी त्रिविध साधना मार्ग में अन्तर्निहित है । बौद्ध-दर्शन में त्रिविध साधना मार्ग के रूप में प्रज्ञा, शील व समाधि का विधान किया गया है ।[21] जैन-दर्शन में भी त्रिविध साधना मार्ग प्रस्तुत किया गया है परन्तु इसमें सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व

सम्यग्-चरित्र के रूप में बताया गया है ।[22] दोनों दर्शनों में साधना मार्ग तो त्रिविध है परन्तु नाम अलग-अलग हैं । यदि गहराई से अवलोकन किया जाए तो जैन-दर्शन व बौद्ध-दर्शन के त्रिविध साधना मार्ग का भाव पक्ष एक समान है । दोनों ही दर्शनों में सत्य ज्ञान के प्रति श्रद्धा व आचरण पर समान रूप से बल दिया गया है । दोनों ही दर्शन एक मार्ग से दूसरे मार्ग को परस्पर सम्बन्धित मानते हैं । नैतिक चरित्र के बिना सम्यग्-दर्शन व ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं है और बिना ज्ञान के श्रद्धा व सदाचरण का विकास नहीं किया जा सकता । दोनों ही दर्शन मोक्ष प्राप्ति हेतु त्रिविध साधना के सभी मार्गों को अनिवार्य मानते हैं ।

बौद्ध एवं जैन दर्शनों में गृहस्थ साधक को श्रमण साधक से निम्न माना है परन्तु दोनों दर्शनों ने यह भी स्वीकार किया है कि गृहस्थ जीवन में भी सम्यक्-दृष्टि और सदाचरण करते हुए मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है । बौद्ध-दर्शन में कहा है कि अस्थिर चित्त वाले मुनि से स्थिर चित्त वाला गृहस्थ श्रेष्ठ है । दोनों ही दर्शन सदाचरण को अधिक महत्त्व देते हैं ।[23] बौद्ध-दर्शन में गृहस्थ उपासकों के लिए पंचशील का उपदेश दिया गया है ।[24] वहीं जैन-दर्शन में पांच अणुव्रत का विधान किया गया है ।[25] पंचशील व पंच अणुव्रत एक समान ही हैं लेकिन बौद्ध-दर्शन में पांचवा शील मद्य निषेध है जबकि जैन-दर्शन में पांचवा अणुव्रत अपरिग्रह है । बौद्ध-दर्शन में अपरिग्रह का महत्त्व स्वीकार तो किया गया परन्तु जैन-दर्शन की तरह स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । इसी प्रकार जैन-दर्शन में

मद्यनिषेध को महत्त्व तो दिया गया परन्तु उसके लिए स्वतन्त्र अणुव्रत के रूप में वर्णन प्राप्त नहीं होता । मद्य-निषेध को जैन-दर्शन में उपभोग-परिभोग अणुव्रत के अन्तर्गत ही मान लिया गया है । गृहस्थ उपासक के लिए दोनों ही दर्शनों में निषिद्ध व्यवसायों का निर्देश दिया गया है लेकिन जैन-दर्शन में प्रन्दह व्यवसायों का निषेध किया गया और बौद्ध-दर्शन में केवल पांच का ही उल्लेख मिलता है । इसके साथ ही जैन-दर्शन में स्पष्ट रूप से भिक्षु के पांच महाव्रतों को लचीला बनाकर अणुव्रतों के रूप में गृहस्थ उपासक के लिए प्रस्तुत किया गया है जबकि बौद्ध-दर्शन में गृहस्थ व भिक्षु वर्ग के लिए पंचशील में कोई अन्तर नहीं किया गया ।[26]

बौद्ध-दर्शन में गृहस्थ उपासक के लिए अष्टशील का विवेचन किया गया है जिसमें पंचशील का आजीवन पालन करने के लिए कहा गया है जबकि शेष तीन शील एक विशेष समयावधि के लिए पालन किए जाते हैं । जैन-दर्शन में भी बारह व्रतों में से पांच अणुव्रत व तीन गुणव्रत जीवन पर्यन्त धारणीय हैं जबकि शिक्षाव्रत विशेष समयावधि में धारणीय है। इससे प्रतीत होता है कि बौद्ध एवं जैन दर्शनों में वर्णित गृहस्थ नियम संख्या में भिन्न-भिन्न हैं परन्तु भाव व स्वरूप में साम्यता प्रकट करते हैं।

वैचारिक सहिष्णुता दोनों ही धर्मों में देखने को मिलती है । जैन-दर्शन में अनेकांतवाद व स्याद्वाद का सिद्धान्त सामाजिक नैतिकता के संदर्भ में वैचारिक सहिष्णुता है । ये सिद्धान्त एक-दूसरे के विचारों का

सम्मान करना सिखाते हैं तथा यह भी स्पष्ट करते हैं कि एक व्यक्ति का सत्य ही यथार्थ सत्य नहीं है यह समय व स्थान सापेक्ष है ।[27] ठीक इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में मध्यम मार्ग की अवधारणा वैचारिक सहिष्णुता को समाहित किए हुए है । बौद्ध-दर्शन में व्यक्ति को एकांगी दृष्टि न रखकर पक्ष-विपक्ष से ऊपर उठने का निर्देश दिया गया है । बौद्ध-दर्शन में सत्य को अनेक पहलुओं से देखने को ही विद्वता माना है ।[28] साथ ही बौद्ध-दर्शन में यह भी माना है कि हमें किसी की बात को जब तक पूर्णत: सत्य नहीं मान लेना चाहिए तब तक स्वयं उसकी अनुभूति न हो जाए । इस तरह दोनों ही दर्शन वैचारिक सहिष्णुता के विषय में समान विचार रखते हैं ।

बौद्ध एवं जैन दोनों दर्शनों ने जीवन को एक प्रकार का संकट कहा है । दोनों ही मनुष्य को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति पाने पर बल देते है । जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाने के लिए दोनों दर्शनों में अलग-अलग नियमों व आचरणों का प्रतिपादन किया गया है । जैन-दर्शन में नीतिशास्त्र के अन्तर्गत मुख्य रूप से त्रिरत्न को रखा गया जबकि बौद्ध-दर्शन में चार आर्यसत्यों को नीतिशास्त्र में सम्मिलित किया गया है । जैन-दर्शन में सम्यग्-दर्शन को आचार-व्यवस्था का आधार माना गया है । नन्दिसूत्र में कहा गया है कि सम्यग्-दर्शन की सुदृढ़ आधार-शीला पर ज्ञान और चरित्र रूपी पर्वतमाला स्थिर है ।[29] बौद्ध-दर्शन में भी सम्यक्-दृष्टि को सदाचरण के लिए आवश्यक माना है । अंगुतर निकाय में

भगवान् बुद्ध ने कहा है कि 'भिक्षुओं सम्यक्-दृष्टि से कुशल धर्म उत्पन्न होते हैं ।' उनके अनुसार सम्यक्-दृष्टि के अभाव में मिथ्या दृष्टिकोण उत्पन्न होता है जो संसार का किनारा है जबकि सम्यक्-दृष्टिकोण निर्वाण का किनारा है ।[30] इससे पुष्टि होती है कि सम्यक्-दृष्टि का दोनों ही दर्शनों में समान महत्त्व है । दोनों ही दर्शनों में अज्ञान को बंधन का और ज्ञान को मुक्ति का कारण माना है। अविधा अर्थात् अज्ञान के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में फंसा रहता है । जिन्हें विद्या अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है वे लोग जन्म-मरण के बंधन से छूट जाते हैं । दोनों ही दर्शनों की त्रिविध साधना में ज्ञान को अनिवार्य मार्ग माना गया है ।

सम्यग्-चरित्र के संबंध में दोनों दर्शनों में भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं । जैन-दर्शन में सदाचरण को सम्यग्-चरित्र कहा गया है । तार्किक ज्ञान जब तक अनुभूति के स्तर पर नहीं उतरता तब तक पूर्णता की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष प्राप्ति हेतु सम्यग्-चरित्र का होना अति आवश्यक है ।[31] परन्तु बौद्ध-दर्शन में सम्यग्-चरित्र के स्थान पर शील शब्द का प्रयोग हुआ है । निर्वाण प्राप्ति के लिए शील का होना आवश्यक है । बौद्ध-दर्शन में सदाचरण के लिए आष्टांगिक साधना पथ का विधान किया गया है ।[32] दोनों दर्शनों में सदाचरण पर साम्यता देखने को मिलती है परन्तु दोनों दर्शनों में नाम और वर्गीकरण की पद्धतियों में अन्तर है । सदाचरण के लिए दोनों दर्शनों में समान अपेक्षाएं रखी गई हैं ।

दोनों दर्शनों में मैत्री, करूणा, मुदिता व उपेक्षा के सम्बन्ध में एक जैसे विचार मिलते हैं । दोनों ही दर्शन प्रेम व स्नेह का संदेश देते हैं । करूणा की भावना अहिंसा से जुड़ी हुई है । दोनों ही दर्शन स्नेह, दया व सहानुभूति को महत्त्व देते हैं ।[33] बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नीतिशास्त्र में यदि लोक कल्याण की भावना को देखा जाए तो बौद्ध-दर्शन की आधारशीला लोक-कल्याण ही है, सम्पूर्ण दर्शन ही लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित है । भगवान् बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद केवल स्वयं ही निर्वाण प्राप्त नहीं किया अपितु समाज के दु:खों को दूर करने हेतु घुम-घुम कर लोगों को उपदेश भी दिए । उनमें केवल स्वहित की भावना ही नहीं थी अपितु परार्थ की भावना से ही गृहत्याग करके सत्य ज्ञान की खोज में निकले थे ।[34] जैन-दर्शन आत्मरक्षण अर्थात् आत्मा के सद्गुणों की रक्षा की बात करता है, यदि इस परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो जैन-दर्शन स्वार्थवादी है परन्तु इसके साथ ही उन्होंने बलिदान व त्याग को भी महत्त्व दिया है । अहिंसा, परिग्रह व त्याग के भावों से जैन-दर्शन परार्थवादी है। यह सत्य है कि जैन-दर्शन में साधना का प्राण आत्महित है परन्तु इसमें नीहित लोक-करूणा व लोकहित के भावों का जो प्रस्फुटन हुआ है, उसे भुलाया नहीं जा सकता । वैसे भी देखा जाए तो व्यक्ति सदाचारी बनता है तो समाज के लिए भी यह उपयोगी है ।

इस तुलनात्मक अध्ययन को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार लिखा जा सकता है ।

6.3 बौद्ध एवं जैन दर्शनों में समानताएं

1. दोनों दर्शन नास्तिक हैं ।
2. दोनों का उद्‌भव हिन्दू धर्म में प्रचलित रूढ़िवादी परम्पराओं के विरोध में हुआ ।
3. दोनों ने ही वेदों की प्रमाणिकता को अस्वीकार किया ।
4. महात्मा बुद्ध और भगवान् महावीर दोनों ही राजवंश से संबंध रखते थे ।
5. दोनों ने ही धार्मिक रीति-रिवाजों व बलि प्रथा का विरोध किया।
6. दोनों ही दर्शन पुनर्जन्म और कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं ।
7. दोनों दर्शनों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था ।
8. दोनों दर्शनों ने आम जन की भाषा में उपदेश दिए ।
9. दोनों दर्शनों ने सभी जातियों व महिला-पुरुष के लिए मोक्ष का मार्ग खोला ।
10. दोनों दर्शनों ने अहिंसा पर प्रमुखता से बल दिया ।
11. बौद्ध और जैन दर्शन सदाचरण को समान रूप से अनिवार्य मानते हैं ।
12. दोनों दर्शन दो-दो सम्प्रदायों में विभाजित हुए, बौद्ध-दर्शन हीनयान और महायान में तथा जैन-दर्शन श्वेताम्बर व दिगम्बर में विभाजित हुए ।

13. दोनों ही दर्शनों में त्रिरत्न की अवधारणा है, बौद्ध-दर्शन में बुद्ध, धम्म व संघ है जबकि जैन-दर्शन में त्रिरत्न सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र है ।

14. दोनों ही दर्शनों के तीन-तीन मुख्य धार्मिक ग्रन्थ हैं, बौद्ध-दर्शन के त्रिपिटक-विनयपिटक, सुत्तपिटक व अभिधम्मपिटक हैं और जैन-दर्शन के अंग, उपांग और मूलगृजीथा है ।

15. दोनों दर्शनों में प्रतिपादित मोक्ष मार्ग एक-दूसरे से साम्यता रखता है । बौद्ध-दर्शन में प्रज्ञा, शील व समाधि बताए गए हैं जो जैन-दर्शन के त्रिरत्न सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान व सम्यग्-चरित्र के समान प्रतीत होते हैं । बौद्ध-दर्शन का आष्टांगिक-मार्ग जैन-दर्शन के त्रिरत्न से साम्यता रखता है ।

जैन-दर्शन	**बौद्ध-दर्शन**
सम्यग्-ज्ञान	प्रज्ञा (सम्यक्-दृष्टि व सम्यक्-संकल्प)
सम्यग्-दर्शन	श्रद्धा या समाधि (सम्यक्-स्मृति व सम्यक्-समाधि)
सम्यग्-चरित्र	शील (सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक्-आजीव और सम्यक्-संकल्प)

16. बौद्ध-दर्शन में सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य व अस्तेय का नैतिक जीवन में पालन करना आवश्यक माना गया है तो जैन-दर्शन में भी इन्हें पंच महाव्रत में सम्मिलित किया गया है ।

17. बौद्ध एवं जैन-दर्शनों के पंचशील व पंच महाव्रत मुख्य रूप में एक दूसरे से साम्यता रखते हैं ।

18. दोनों ही दर्शन मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्मसंयम को आवश्यक मानते हैं ।

6.4 बौद्ध एवं जैन दर्शन में असमानताएँ

उपर्युक्त समानताओं के बावजूद दोनों दर्शनों में विभिन्नता भी है जो इस प्रकार है :

	विषय	**बौद्ध-दर्शन**	**जैन-दर्शन**
1	संस्थापक	महात्मा बुद्ध	भगवान महावीर
2	जन्म-मृत्यु	567 - 488 ई० पू०	599-527 ई०पू०
3	वंश	शाक्य वंश	ज्ञातृक वंश
4	पूजा स्थल	बौद्ध मठ, मंदिर	मंदिर
5	ग्रन्थ भाषा	पालि	प्राकृत
6	आत्मा का स्वरूप	अनात्मवादी	आत्मा को स्वीकार करते हैं।
7	प्रमुख सिद्धांत	चार आर्यसत्य	त्रिरत्न
8	मोक्ष	बौद्ध-दर्शन के अनुसार शरीर का त्याग किए बिना इस जगत में रहते हुए निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है ।	जैन-दर्शन के अनुसार शरीर का त्याग करने के उपरान्त ही जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाया जा सकता है ।
9	मोक्ष प्राप्ति के साधन	बौद्ध-दर्शन के अनुसार मध्यम मार्ग को धारण करके व	जैन-दर्शन के अनुसार कठोर तपस्या व

		बौद्ध संघ में रहते हुए मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है ।	उपवास से मोक्ष प्राप्ति होती है ।
10	अहिंसा	अहिंसा पर प्रमुख रूप से बल दिया	अहिंसा के पालन में अत्यन्त कठोरता
11	आचारशास्त्र	आष्टांगिक-मार्ग	त्रिरत्न
12	वैचारिक सहिष्णुता	यत्र-तत्र बिखरे हुए रूप में	स्याद्वाद का प्रमुख सिद्धान्त
13	दु:ख के कारण	प्रतीत्यसुत्पाद का उल्लेख	कहीं उल्लेख नहीं मिलता
14	पञ्चस्कन्ध	पञ्चस्कन्ध को मान्यता	अणु सिद्धान्त को मान्यता व पञ्चस्कन्ध का खण्डन
15	अपरिग्रह	कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं	पंच महाव्रतों में से एक महाव्रत अपरिग्रह है ।
16	गृहस्थ आचरण नियम	गृहस्थ उपासक के लिए अलग आचरण संबंधी नियमों का उल्लेख नहीं मिलता, सभी के लिए आष्टांगिक-मार्ग का उल्लेख है । बौद्ध-दर्शन में द्वाद्वश व्रत जैसा कोई उल्लेख नहीं मिलता	गृहस्थ व भिक्षु के लिए पृथक-पृथक व्रतों का उल्लेख जैसे भिक्षु के लिए पंच महाव्रत हैं जबकि गृहस्थ के लिए पाँच अणुव्रत हैं । जैन-दर्शन में द्वाद्वश व्रत का विधान किया गया है ।
17	व्यापार निषेध	बौद्ध-दर्शन में पांच प्रकार के व्यापारों का निषेध बताया गया है ।	जैन-दर्शन में 15 प्रकार के व्यापारों के निषेध का उल्लेख मिलता है ।

18	सावधानियाँ	बौद्ध–दर्शन में प्राप्त नहीं होता।	जैन–दर्शन में समिति, गुप्ति आदि का उल्लेख
19	मद्यपान निषेध	पंचशील में एक शील मद्यपान निषेध का है ।	जैन–दर्शन में कहीं पर प्रमुखता से उपलब्ध नहीं है । उपभोग–परिभोग व्रत के आंशिक रूप में उल्लेख
20	ध्यान	विपश्यना पद्धति सम्यक्–स्मृति व समाधि के अभ्यास से ध्यानावस्था में पहुँचा जा सकता है ।	अनुप्रेक्षा या प्रेक्षा पद्धति ध्यान के लिए बारह अनुप्रेक्षाओं का विधान किया गया है जिनका बार–बार अभ्यास या चिंतन करने को कहा गया है ।
21	निष्कर्ष	बौद्ध–दर्शन में सरल सिद्धान्तों व व्यावहारिक मार्ग का उल्लेख जो सभी के करने योग्य है । गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी आष्टांगिक–मार्ग का पालन किया जा सकता है । व्यावहारिकता के कारण ही बौद्ध–दर्शन का भारत से बाहर पूर्वी देशों में अस्तित्व बना हुआ है ।	जैन–दर्शन में अति कठिन व गूढ सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन जो आम जन की पहुँच से दूर हैं । गृहस्थ जीवन में इन नियमों का पालन करना अति कठिन है। जटिलता व कठोरता के कारण ही जैनमत का इतना अधिक प्रचार–प्रसार नहीं हो पाया । भारत में भी केवल सीमित संख्या में इसके अनुयायी हैं।

बौद्ध एवं जैन दर्शनों के दार्शनिक व नैतिक पक्ष के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि बौद्ध एवं जैन दर्शनों में परस्पर कुछ समानताएँ व विषमताएं हैं जो एक दूसरे के साथ साम्यता व विषमता स्थापित करती हैं । महात्मा बुद्ध व वर्धमान महावीर के जीवन एवं शिक्षाओं में समानता के कारण कुछ लोग बौद्ध एवं जैन दर्शनों को एक ही बताते हैं तथा यह भी मानते हैं कि जैन-दर्शन बौद्ध-दर्शन की एक शाखा मात्र है ।[35] परन्तु ग्यूरीनोट ने बौद्ध-दर्शन व जैन-दर्शन के संस्थापकों के विषय में पाँच महत्त्वपूर्ण विभेदसूचक घटनाओं के आधार पर दोनों दर्शनों को भिन्न-भिन्न माना है । ये घटनाएं - जन्म, उनकी माताओं की मृत्यु के सम्बन्ध में, गृह त्याग के संबंध में, ज्ञान प्राप्ति व मृत्यु के सम्बन्ध में हैं, जो इन दर्शनों को अलग-अलग सिद्ध करती हैं ।[36]

दोनों दर्शनों में साम्यता आकस्मिक नहीं थी अपितु तत्कालीन परिवेश, सामाजिक व परिस्थितिजन्य थी । इन साम्यताओं के बावजूद इन दोनों दर्शनों में भिन्नता भी है । दोनों दर्शनों में दार्शनिक व सैद्धान्तिक रूप से विभेदता है । दोनों दर्शनों की आचार पद्धति एक-जैसी दिखते हुए भी भिन्न-भिन्न है । इसलिए बौद्ध एवं जैन दर्शन की समानताओं व विषमताओं को देखकर कहा जा सकता है कि दोनों दर्शन अलग-अलग हैं और दोनों का अपना अलग-अलग महत्त्व है ।

6.5 बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का अन्य भारतीय दर्शनों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

प्रत्येक देश की भौगोलिक परिस्थिति व पूर्ववर्ती परम्पराओं के संदर्भ में ही उस देश की चिन्तनधारा का विकास होता है । भारत की अपनी भौगोलिक परिस्थिति, जलवायु व पूर्ववर्ती परम्पराएं और महापुरुष रहे हैं इसलिए भारतीय नैतिक चिन्तन की अपनी अलग-अलग विशेषताएं हैं । भारतीय नैतिक चिन्तन में दो परम्पराएं देखने को मिलती हैं । एक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करती है उसे आस्तिक परम्परा या दर्शन कहा जाता है । इस परम्परा को वैदिक दर्शन भी कहा जाता है । दूसरी परम्परा नास्तिक है जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करती इसमें चार्वाक, बौद्ध व जैन दर्शन सम्मिलित हैं । आस्तिक दर्शन में सांसारिक और पारमार्थिक कल्याण को ध्यान में रखते हुए कर्तव्य पालन का विधान किया गया है लेकिन नास्तिक दर्शनों में नैतिक जीवन पर विशेष बल दिया गया है । नास्तिक दर्शनों में जीवन का भावात्मक पक्ष अधिक मुखरित हुआ है । वैदिक दर्शनों में तत्व, आत्मा, परमात्मा जैसी अवधारणाओं पर अधिक बल दिया गया है, उन्होंने आध्यात्मिक ज्ञान को प्रश्रय दिया । इनके अनुसार रहस्यात्मक अवधारणाओं में ही जीवन के नैतिक मूल्य छिपे हुए हैं । जबकि नास्तिक दर्शनों में स्पष्ट रूप से सदाचरण व नैतिकता संबंधी नियमों का वर्णन प्राप्त होता है । वैचारिक मतभेद होने के बावजूद वैदिक-दर्शन व नास्तिक दर्शन में नैतिक आचार में

साम्यता देखने को मिलती है । साम्यता के बावजूद कुछ पक्षों पर विषमता भी है जिनका यहां वर्णन किया गया है ।

बौद्ध एवं जैन-दर्शन के प्रमुख नैतिक विचार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं जो कि अन्य भारतीय दर्शनों को भी मान्य है । मनु स्मृति में भी दस धर्म बताए गए हैं जो हैं - धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध परिहार । ये दस धर्म सार्वभौम हैं ।[37] बौद्ध एवं जैन दर्शनों में पंचशील व पंचमहाव्रत की अवधारणा है जो इन दस धर्मों को समाहित किए हुए है ।

वैदिक-दर्शन में आश्रम व्यवस्था का विधान है जिसमें अंतिम आश्रम संन्यास आश्रम है । संन्यासी से यह अपेक्षा की गई है कि वह सभी प्राणियों के प्रति मैत्री-भाव रखे व द्रोहरहित तथा आत्मसंयम को धारण करे ।[38] बौद्ध एवं जैन दर्शन में भी मैत्री, करूणा, मुदिता व उपेक्षा की भावनाएं है जो सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा, करूणा व दया भाव रखने के लिए निर्देश देती हैं ।

वैदिक-दर्शन में भाग्य के साथ-साथ कर्म सिद्धान्त को भी माना है। नैतिक आचरण में कर्मों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । वैदिक-दर्शन शुभ कर्मों को करने के लिए कहते हैं क्योंकि पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति जैसा कर्म करेगा वैसा ही उसे फल प्राप्त होगा अर्थात् जैसा करेगा वैसा पाएगा । गीता में कर्म-योग पर विस्तार से चर्चा की गई है । सभी दर्शनों में बार-बार मनुष्य को अच्छे कर्म करने के लिए कहा गया है ।

बौद्ध व जैन दर्शनों में भी कर्म सिद्धान्त का उल्लेख प्राप्त होता है । ये दोनों दर्शन भी सदाचरण द्वारा अच्छे कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं । बौद्ध-दर्शन में कार्य-कारण सिद्धान्त ही कर्म नियम है ।[39] इसलिए कर्म सिद्धान्त में भी वैदिक दर्शनों तथा बौद्ध एवं जैन दर्शनों में साम्यता देखने को मिलती है ।

वैदिक-दर्शन व बौद्ध-दर्शन दोनों में कहा गया है कि गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है । जैन-दर्शन इस संदर्भ में थोड़ा-सा विभेद रखता है परंतु इसमें भी स्वीकार किया गया है कि गृहस्थ उपासक सदाचरण करते हुए मोक्ष तक पहुंच सकता है । बौद्ध-दर्शन में मानव को अति दु:साध्य मार्ग को छोड़कर मध्यम मार्ग का अनुपालन करने के लिए कहा गया है तो गीता में भी कहा गया है कि मनुष्य लौकिक जीवन व्यतीत करते हुए कर्म योग और राजयोग के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है । बौद्ध-दर्शन में शील[40] और जैन-दर्शन में सम्यग् आचरण[41] को मोक्ष प्राप्ति का एक चरण बताया गया है तो भगवद् गीता में भी कहा गया है कि फल की इच्छा न रखते हुए कर्म करो इससे जीवन के सुख-दु:ख स्वत: ही कम हो जायेंगे ।[42]

सभी भारतीय दर्शन अविद्या अर्थात् अज्ञानता को दु:खों का मूल कारण बताते हैं, जैन-दर्शन में भी सम्यग्-ज्ञान की संकल्पना की गई है इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में बताया गया है कि सम्यक्-दृष्टि व सम्यक्-संकल्प से अज्ञान के अंधेरे को दूर किया जा सकता है ।

वेदान्त-दर्शन में अविद्या को ही बंधन का मूल कारण माना गया है । गीता की दृष्टि में भी मोह, माया या अज्ञान ही बंधन का कारण है जिसे ज्ञान योग से भी दूर किया जा सकता है ।[43] इस प्रकार सभी भारतीय दर्शन मोह, माया, तृष्णा या अविद्या आदि को ही बंधन या दु:खों का कारण समझते हैं । सभी का मानना है कि सम्यग्-ज्ञान या यथार्थ ज्ञान से माया के जाल को तोड़ा जा सकता है । इसलिए बौद्ध एवं जैन दर्शनों की अन्य भारतीय दर्शनों से साम्यता देखने को मिलती है ।

बौद्ध-दर्शन में नैतिक जीवन या सदाचरण के नियमों का प्रमुखता से उल्लेख किया गया है । बौद्ध-दर्शन में सदाचरण के लिए शील शब्द का प्रयोग किया गया है शील की संकल्पना बौद्ध-दर्शन के आंष्टांगिक मार्ग में ही समाहित है ।[44] जैन-दर्शन में भी सदाचरण के लिए सम्यग्-चरित्र की अवधारणा दी गई है । जैन-दर्शन में कहा गया है कि आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता के लिए सम्यग्-दर्शन व सम्यग्-ज्ञान के साथ-साथ सम्यग्-चरित्र भी आवश्यक है - बिना सम्यग्-चरित्र के पूर्णता को प्राप्त नहीं किया जा सकता ।[45] वैदिक दर्शनों में भी शील, सामयाचारिक, सदाचार या शिष्टाचार आदि का सदाचरण के सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है । मनुस्मृति में शील, सदाचरण और मन की प्रसन्नता को धर्म का मूल बताया गया है । वाशिष्ठ सूत्र में भी यह कहा गया है कि जिसका मन स्वार्थ की भावना से रहित है वह शिष्ट है । गीता के निष्काम कर्म को भी सम्यग्-चरित्र का पर्यायवाची माना जा सकता है ।[46] गीता में कहा गया है कि मनुष्य

को लोक-कल्याणकारी कर्मों का सम्पादन करना चाहिए जो एक तरह से नैतिक आचरण करने के लिए ही कहा जा रहा है । सभी भारतीय दर्शनों में काम, क्रोध व लोभ को त्यागकर अहिंसा, क्षमा व दया के गुणों को धारण करने के लिए निर्देश दिए गए हैं ।[47] बौद्ध एवं जैन दर्शन भी सद्गुणों का पालन करने के लिए कहते हैं । बौद्ध एवं जैन दर्शनों तथा अन्य सभी भारतीय दर्शनों में भिन्न-भिन्न नाम से सदाचरण का उल्लेख मिलता है इससे यह पुष्टि होती है कि सभी भारतीय दर्शन सदाचरण को महत्त्वपूर्ण मानते हैं । यद्यपि जैन-दर्शन का सम्यग्-चरित्र व्यक्तिपरक या साधना परक है लेकिन फिर भी यह दर्शन लोक व्यवहार की अपेक्षा नहीं करता इसके विपरीत बौद्ध-दर्शन व वैदिक-दर्शन लोक व्यवहार को अधिक महत्त्व देते हैं ।

वैदिक-दर्शन में कहा गया है कि मनुष्य के दु:खों का कारण उसका इन्द्रिय सुख है, इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है । राग-द्वेष की भावना से ऊपर उठकर ही पुर्नजन्म, पीड़ा व दु:खों से मुक्ति मिल सकती है । इन्द्रियों पर नियंत्रण, तपस्या, ध्यान, समाधि तथा फल की इच्छा न करते हुए कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है ।[48] उसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में समस्त दु:खों का कारण तृष्णा को बताया गया है और कहा गया है कि तृष्णा पर नियन्त्रण 'आष्टांगिक-मार्ग' के द्वारा किया जा सकता है । तृष्णा ही पुनर्जन्म का कारण है । बौद्ध-दर्शन में सांसारिक दु:खों से मुक्ति व ज्ञान प्राप्ति का

द्वार 'आष्टांगिक-मार्ग' को बताया गया है । मनुष्य 'सम्यक्-दृष्टि' से होते हुए 'सम्यक्-समाधि' तक पहुँचकर निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है ।[49] वैदिक-दर्शन में भी समाधि को मोक्ष प्राप्ति का अंतिम चरण बताया गया है और बौद्ध-दर्शन में 'सम्यक्-समाधि' निर्वाण प्राप्ति हेतु 'मध्यम-मार्ग' का अंतिम चरण है । जैन-दर्शन में भी कहा है कि त्रिरत्न को धारण करके इन्द्रियों को नियन्त्रित किया जा सकता है । पंच महाव्रत व द्वाद्वश व्रत का पालन करके इच्छाओं को सीमित किया जा सकता है व मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है । इसलिए कहा जा सकता है कि दु:खों के कारण के सम्बन्ध में सभी भारतीय दर्शनों में साम्यता है ।

बौद्ध एवं जैन दर्शनों का उद्भव वैदिक दर्शनों से ही हुआ । इसलिए स्वाभाविक रूप से वैदिक दर्शनों के सिद्धान्त व नियमों का बौद्ध एवं जैन दर्शनों में भी समावेश हो गया । इन दोनों दर्शनों का उद्भव वैदिक दर्शनों की परम्पराओं व नियमों के विरोध स्वरूप हुआ था तो साम्यता के साथ-साथ इनमें विषमता भी व्याप्त है । जिसका यहां वर्णन करना अपेक्षित है ।

दार्शनिक दृष्टिकोण से वैदिक-दर्शन ईश्वर नाम की परम शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं परन्तु बौद्ध एवं जैन दर्शन किसी दैवीय शक्ति को स्वीकार नहीं करते । सभी वैदिक-दर्शन वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं, वेदों व उपनिषदों के नियमों व सिद्धान्तों की इन

दर्शनों में व्याख्या की गई है जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शन वैदिक ज्ञान को प्रामाणिक नहीं मानते । ये दर्शन अवेदान्तिक हैं ।[50]

सामान्यत: कहा जाता है कि त्रिविध साधना की अवधारणा सभी भारतीय दर्शनों में है । परन्तु इनके स्वरूप में भिन्नता है । बौद्ध एवं जैन दर्शन त्रिविध साधना के सभी अंगों को आवश्यक व परस्पर निर्भर मानते हैं जबकि गीता में कहा है कि किसी भी एक योग को धारण करके मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है । जैसे यदि कोई साधक भक्ति योग का पालन करता है तब भी वह जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो सकता है इसी तरह केवल ज्ञानयोग या केवल कर्मयोग का पालन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है । ठीक इसके विपरीत जैन-दर्शन के अनुसार केवल सम्यग्-दर्शन, सम्यग्-ज्ञान या केवल सम्यग्-चरित्र से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती अपितु तीनों को धारण करके ही पूर्णत्व को प्राप्त किया जा सकता है । इसी प्रकार बौद्ध-दर्शन में भी शील, समाधि व प्रज्ञा तीनों को निर्वाण प्राप्ति के लिए आवश्यक माना है ।[51]

वैदिक दर्शनों में स्वीकार किया गया है कि आश्रम व्यवस्था का पालन करते हुए संन्यास आश्रम में ध्यान व समाधि से परम ज्ञान की प्राप्ति की जा सकती है ।[52] गीता में तो यह कहा है कि अनासक्त कर्म करते हुए भी जन्म-मरण के बंधन से छुटकारा पाया जा सकता है, संन्यासी जीवन व्यतीत करना आवश्यक नहीं हैं । बौद्ध-दर्शन में भी यही स्वीकार किया गया कि गृहस्थ भी मध्यम मार्ग पर चलकर निर्वाण तक

पहुंच सकते हैं परन्तु जैन-दर्शन में कहा है कि श्रमण जीवन से ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है । अप्रत्यक्ष रूप से जैन-दर्शन ने यह भी स्वीकार किया कि गृहस्थ भी मोक्ष के भागी बन सकते हैं परन्तु श्रमण परम्परा को अधिक श्रेष्ठ माना है । इसलिए वैदिक-दर्शन अपलायनवादी हैं जबकि जैन-दर्शन पलायनवादी प्रतीत होता है ।[53]

वैदिक दार्शनिक परम्परा में भक्ति को भी समान महत्त्व दिया गया है जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शनों में भक्ति का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । वैदिक दर्शनों में कर्म पर अधिक बल दिया गया है जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शनों में आचरण व नैतिक जीवन पर अधिक बल दिया गया है । इसलिए जैन-दर्शन की प्रकृति व्यक्तिपरक है जबकि वैदिक दर्शनों की समाजपरक प्रकृति है । बौद्ध-दर्शन में भी लोक-कल्याण पर अधिक बल दिया गया है ।

बौद्ध एवं जैन दर्शनों में आचरण नियमों व नैतिक नियमों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है । बौद्ध-दर्शन में आष्टांगिक-मार्ग के साथ-साथ पंचशील का उल्लेख किया है जो व्यक्ति को यह निर्देश देते हैं कि जीवन में किन-किन नियमों को धारण करना चाहिए । ठीक इसी प्रकार जैन-दर्शन में भी पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति व द्वादश व्रतों का विस्तार से वर्णन किया गया है । जैन-दर्शन में यह भी बताया गया है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए व क्या नहीं करना चाहिए । बौद्ध एवं जैन दर्शनों का आधार नैतिक आचरण ही है । जबकि वैदिक दर्शनों में

कर्मवाद, पुरुषार्थ व आश्रम व्यवस्था में ही नैतिक नियमों का उल्लेख किया गया है। वैदिक दर्शनों में धार्मिक अनुष्ठानों को अधिक महत्त्व दिया गया है तथा यज्ञादि को मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक माना है । बौद्ध एवं जैन दर्शन धार्मिक अनुष्ठानों को स्वीकार नहीं करते उनका मानना है कि बाह्य कर्मों से आंतरिक शुद्धता को प्राप्त नहीं किया जा सकता । बौद्ध एवं जैन दर्शन आत्मिक शुद्धता पर बल देते हैं; इनका मानना है कि व्यक्ति को स्वयं कुविचारों से सुविचारों की ओर बढ़ना चाहिए । मन से दुर्भावों को खत्म करना चाहिए तब ही बाह्य रूप से शुद्धता को प्राप्त करना श्रेयस्कर होगा । बौद्ध एवं जैन दर्शनों में परिग्रह का भी निषेध किया गया है जबकि वैदिक दर्शनों में चार पुरुषार्थ की अवधारणा दी गई है जिसमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष है । इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक-दर्शन परिग्रह का पूर्णत: बहिष्कार नहीं करते जबकि जैन-दर्शन में परिग्रह का पूर्णत: निषेध किया गया है । बौद्ध एवं जैन दर्शन वर्तमान में फैली सामाजिक कुरीति जातिप्रथा को जन्मगत रूप में स्वीकार नहीं करते जबकि वैदिक-दर्शन जाति-प्रथा को समाज व्यवस्था के लिए श्रेयस्कर मानते हैं ।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि बौद्ध एवं जैन दर्शन वैदिक दर्शनों से नैतिक आचरण व कर्म सिद्धान्त के सन्दर्भ में तो साम्यता रखते हैं परन्तु बाह्य आडम्बर, धार्मिक अनुष्ठान व जाति-प्रथा जैसे विषयों पर मतभेद रखते हैं । बौद्ध एवं जैन दर्शन का उद्‌भव हिन्दू समाज में फैली सामाजिक कुरीतियों के विरोध में ही हुआ

था तो स्वाभाविक है कि इस संदर्भ में दोनों दर्शनों का वैदिक दार्शनिक विचारधारा से मतभेद होगा ।

6.6 बौद्ध एवं जैन दर्शनों के नैतिक व सामाजिक मूल्यों का आधुनिक भारतीय विचारकों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय नैतिक चिन्तन परम्परा प्राचीन से होती हुई आधुनिक तक पहुंची है । समय के साथ कुछ और नैतिक मूल्यों का भी उद्‌भव हुआ है । आधुनिक नैतिक चिंतन धारा में सर्वप्रथम महात्मा गांधी पर चर्चा करना अधिक प्रासंगिक है । महात्मा गांधी न केवल भारत के अपितु विश्व के महान् विचारकों, प्रतिभा संपन्न, धार्मिक व नैतिक महापुरुषों में से एक हैं । महात्मा गांधी पर उपनिषद्, गीता, रामायण, बौद्ध एवं जैन दर्शन के साथ-साथ पाश्चात्य विचारकों का भी प्रभाव रहा है । फलस्वरूप महात्मा गांधी के विचारों में धार्मिकता के साथ-साथ सामाजिकता भी देखी जा सकती है।

महात्मा गांधी के समस्त क्रियाकलापों का केंद्र बिन्दु ईश्वर था, उन्होंने सत्य को ईश्वर माना है और अहिंसा को ईश्वर प्राप्ति का साधन बताया है । गांधी जी की अहिंसा का अर्थ प्रेम है ।[54] गांधी जी की अहिंसा अन्याय को खत्म करने के साधन के रूप में प्रस्तुत हुई है, उन्होंने सत्याग्रह के द्वारा अहिंसा का सामाजिक जीवन में प्रयोग किया । इसके विपरीत बौद्ध एवं जैन दर्शनों में अहिंसा मात्र हिंसा से बचने के लिए थी। जैन-दर्शन के नियम गृहस्थ के लिए अति कठिन व अव्यवहारजन्य थे ।[55]

यद्यपि गांधी तथा बौद्ध एवं जैन दर्शनों में अहिंसा को सर्वोपरि माना गया है परंतु गांधी ने अहिंसा का सामाजिक स्तर पर प्रयोग किया जिसमें जैन-दर्शन असफल रहा ।

महात्मा गांधी ने नैतिक जीवन का परम साध्य सत्य को माना है । उनका मानना है कि सत्य सर्वमान्य व सार्वभौम है इसलिए सत्य को ईश्वर कहना न्याय संगत है । गांधी दर्शन में सत्य का स्थान सर्वोपरि है व अहिंसा का दूसरा जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शनों में अहिंसा सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित है ।[56] बौद्ध एवं जैन दर्शन ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते इसलिए उनका सत्य ईश्वर नहीं है परन्तु तीनों ही विचारधाराएं इस बात को स्वीकार करती हैं कि सत्य न बोलना ही उत्तम है यदि कोई उसको अहिंसक तरीके से नहीं बोल सकता ।

महात्मा गांधी ने अस्तेय व ब्रह्मचर्य को व्यापक अर्थ में वर्णित किया है । गांधी, बौद्ध एवं जैन दर्शन से भी आगे बढ़ते हुए कहते हैं कि किसी वस्तु को उसके स्वामी की आज्ञा के बिना लेना भी चोरी है । ब्रह्मचर्य को गांधी जी स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध तक सीमित न करके उससे अधिक व्यापक मानते हैं । उनका मानना है कि मन, वचन व काया से समस्त इन्द्रियों का संयम ब्रह्मचर्य है । इससे स्पष्ट होता है कि इन परम्पराओं के मध्य साम्यता है ।[57] अपरिग्रह की अवधारणा को गांधी जी ने बौद्ध एवं जैन दर्शनों से भिन्न स्वरूप रखते हुए धर्मार्थ-न्यास के रूप में प्रयुक्त किया । गांधी जी ने धर्मार्थ-न्यास को व्यावहारिक धरातल पर

प्रयोग करके साबित किया कि इन सिद्धान्तों को केवल बोला ही नहीं जा सकता अपितु वास्तविक रूप में भी प्रयोग किया जा सकता है । गांधी जी का मानना था कि अपनी जरूरत की वस्तु में भी स्वामित्व का भाव नहीं रखना चाहिए ।[58]

इनके अतिरिक्त महात्मा गांधी ने निर्भयता, सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी व सर्वोदय के मूल्यों का भी अपने जीवन में प्रयोग किया । सैद्धान्तिक दृष्टि से महात्मा गांधी और बौद्ध एवं जैन दर्शनों में साम्यता है परन्तु व्यावहारिक स्तर पर साम्यता नहीं है क्योंकि कुछ प्रयोग ऐसे हैं जिनकी मौलिकता का श्रेय महात्मा गांधी को जाता है । सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह के सिद्धान्त बौद्ध एवं जैन दर्शनों में विद्यमान तो थे परन्तु इनका इतने व्यापक स्तर पर प्रयोग नहीं हुआ था जितना महात्मा गांधी के द्वारा किया गया । महात्मा गांधी ने इन मूल्यों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्रों में प्रयोग करके मानव जीवन में इनकी उपयोगिता व महत्त्व का आभास करवाया । महात्मा गांधी ने इन मूल्यों का नए आवरण के साथ प्रयोग किया जो एक अद्वितीय प्रयास था । महात्मा गांधी ने एक बार फिर से पुनः इन मूल्यों की प्रासंगिकता को सिद्ध किया है । अतः कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी और बौद्ध एवं जैन दर्शनों के विचारों में परस्पर साम्यता अधिक है विषमता न्यूनतम है ।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक युग के प्रतिभावान चिंतक रहे हैं । उनके विचार वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, वेदान्त आदि से प्रभावित रहे हैं।

उन्होंने दीन-दुखियों व रोगियों की **निष्काम भाव** से सेवा को सबसे बड़ी योग साधना माना है । तीव्र कर्मण्यता एवं कर्मठता की साधना उनकी नैतिक शिक्षा का सार है । उन्होंने बार-बार 'अनासक्त कर्म' के नैतिक आदर्श का संदेश दिया है । विवेकानन्द ने प्रेम को एकता स्थापित करने का सबसे बड़ा साधन माना है । उन्होंने 'प्रेम' को भगवान् माना है । 'मानव सेवा ही सर्वोपरि धर्म है' उनका यह विचार उन्हें मानवकेन्द्रित बनाता है ।[59] बौद्ध एवं जैन दर्शनों में भी प्रेम व मानव-सेवा को महत्त्व दिया गया है । इन दोनों दर्शनों में भी कर्म सिद्धान्त का बार-बार वर्णन मिलता है परन्तु ये दोनों दर्शन आध्यात्मिक पूर्णता को अधिक महत्त्व देते हैं जबकि विवेकानन्द का मानना है कि इस जगत के दीन-दुखियों की पीड़ा को दूर करके भी आंतरिक शांति मिल सकती है । इसके लिए किसी योग साधना की आवश्यकता नहीं है । बाहरी तौर पर इनके मध्य भिन्नता प्रकट होती हो परन्तु इनका लक्ष्य एक ही है वह है-लोकहित ।

आधुनिक भारतीय चिन्तन धारा में अरविन्द घोष और रविन्द्र नाथ टैगौर का नाम भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है । अरविन्द घोष मानवतावादी थे । वे व्यक्ति के पूर्णत्व पर अधिक बल देते हैं । इनके अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य दिव्य जीवन प्राप्त करना है और उसकी प्राप्ति के लिए पूर्णत्व योग के स्तरों की व्याख्या की है । उनके नैतिक विचार आध्यात्मिकता से भरे हुए हैं ।[60] रविन्द्रनाथ टैगोर अन्य के प्रति 'प्रेम' जाग्रत करने को कहते हैं । प्रेम से अभिप्राय है-सहानुभूति तथा

सहयोग की मनोवृत्ति विकसित करना । प्रेम की भावना से त्याग की भावना का विकास होता है तथा 'स्व' की भावना का ह्रास होता है । इसके साथ टैगोर मानवतावादी भी थे । इन्होंने कई जगह ईश्वर को मानवीय रूप में और मानव को ईश्वर के रूप में प्रस्तुत किया । टैगोर का नैतिक आचरण मानव को केंद्र में रखता है उनका मानना है कि मानव की सेवा ही ईश्वर की सेवा है । मानव की सेवा से ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है ।[61] टैगोर और अरविन्द घोष ईश्वरवादी हैं इसलिए इनका अंतिम लक्ष्य भी ईश्वर से मिलन प्रतीत होता है जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शन नास्तिकवादी हैं इसलिए उनके आचारशास्त्र में कहीं भी ईश्वर का स्थान नहीं है परन्तु प्रेम, दया व सहानुभूति को सभी स्वीकार करते हैं ।

आचार्य विनोबा भावे ने भी 'साम्य-योग' व सर्वोदय के नैतिक विचारों का प्रतिपादन किया । 'साम्य योग' का सिद्धान्त मनुष्य-मनुष्य के बीच विभेद को स्वीकार नहीं करता । उनका मानना है कि सभी मानवों में एक ही आत्मा समान रूप से विद्यमान है । सर्वोदय की अवधारण से अभिप्राय है शोषण रहित समाज का निर्माण करना । उनके अनुसार सर्वोदय के दो नैतिक आदर्श हैं व्यैक्तिक नैतिकता व सामाजिक नैतिकता। दोनों नैतिक आदर्शों की पूर्णता तपस्या व त्याग से ही हो सकती है । जीवन व आचरण को पवित्र बनाने के लिए तपस्या तथा सामाजिक नैतिकता के लिए त्याग ही एकमात्र साधन है । त्याग व तपस्या की

अवधारणा से विनोबा जी के विचार बौद्ध एवं जैन दर्शनों से प्रभावित प्रतीत होते हैं ।[62]

इसलिए कहा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न नैतिक विचार रखते हुए भी सभी विचारकों व परम्पराओं का लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति ही है और उसे प्राप्त करने के लिए समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार उनके नैतिक आचरण व नियमों में परविर्तन देखने को मिलता है । अतः कह सकते हैं कि सभी भारतीय दर्शन व विचारक अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रखते हुए एक-दूसरे से साम्यता रखते हैं ।

6.7 निष्कर्ष

बौद्ध एवं जैन दर्शनों तथा वैदिक दर्शनों का विकास एक ही समाज व सामाजिक पृष्ठभूमि में हुआ हैं । पूर्ववत् चर्चा के अनुसार नैतिक परम्पराओं या मूल्यों का विकास उस क्षेत्र विशेष की जलवायविक परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है । बौद्ध एवं जैन दर्शनों की पृष्ठभूमि वैदिक दर्शन ही थे फलस्वरूप नैतिक मूल्यों में साम्यता स्वाभाविक है । सत्य, अहिंसा, अस्तेय जैसे मूल्य सार्वभौमिक हैं वे किसी काल व परिस्थिति में परिवर्तित नहीं होते । इसलिए बौद्ध एवं जैन दर्शन के मध्य भी साम्यता प्रकट होती हैं । बौद्ध एवं जैन दर्शनों का उद्‌भव वैदिक परम्पराओं के विरोध में हुआ इसलिए इन दोनों दर्शनों में साम्यता के साथ-साथ विषमता भी है । इन साम्यताओं के बावजूद भी इनके

अपने-अपने कुछ मौलिक सिद्धान्त हैं जो इनमें विभेद करते हैं । इसलिए बौद्ध एवं जैन दर्शनों को पृथक-पृथक मानना ही अधिक युक्तिसंगत होगा।

उपर्युक्त तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात् कहा जा सकता है कि बौद्ध एवं जैन दर्शन वैदिक दर्शनों के साथ साम्यता के साथ-साथ विषमता भी रखते हैं । विषमता का आधार वैदिक कर्मकाण्ड व सामाजिक प्रथाएं हैं । इनके मध्य नैतिक आचरण की विधियों में भी विभेद है । वैदिक दर्शनों में भक्ति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया जबकि बौद्ध एवं जैन दर्शन भक्ति को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते ये व्यक्ति के नैतिक आचरण को अधिक महत्त्व देते हैं । यद्यपि नैतिक मूल्यों के स्वरूप में इनमें साम्यता दिखाई देती है । प्राचीन परम्परा से आगे बढ़ते हुए आधुनिक परम्परा में भी गांधी, टैगोर, विवेकानन्द, विनोबा भावे आदि ने इन मूल्यों को धारण किया तथा व्यापक स्तर पर व्यावहारिक धरातल पर प्रयोग भी किया । आधुनिक विचारकों ने बौद्ध एवं जैन-दर्शन के समान तप एवं संन्यासी जीवन को इतना महत्त्व नहीं दिया लेकिन बौद्ध-दर्शन के समान मध्यम-मार्ग अपनाने को अधिक उपयुक्त माना । इसलिए निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सभी भारतीय दर्शन व विचारक अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए एक-दूसरे से समन्वय रखे हुए हैं । प्राचीन काल से ही भारत भूमि पर समन्वय देखने को मिलता है जो आज भी हम प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं ।

संदर्भ सूची

1. राधाकृष्णन, एस०, **भारतीय दर्शन (भाग–1)**, पृ० 234
2. **वही**, पृ० 280, 232
3. उपाध्याय, बलदेव, **बौद्ध–दर्शन मीमांसा**, पृ० 5–6
4. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 232
5. **वही**, पृ० 236
6. जैन, सागरमल, **जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन (भाग–1)**, पृ० 196
7. **वही**, पृ० 198
8. **वही**, पृ० 401
9. मिश्र, जगदीशचन्द्र, **भारतीय दर्शन (भाग–1)**, पृ० 338
10. सिन्हा, हरेन्द्रप्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ० 125–26
11. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 233
12. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत (भाग–1)**, पृ० 196–198
13. मिश्र, जगदीशचन्द्र, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 337–38
14. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 264
15. **वही**, पृ० 264–65
16. **वही**, पृ० 342
17. **वही**, पृ० 265
18. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, भाग–2, पृ० 239
19. **वही**, पृ० 235–236
20. **वही**, पृ० 237
21. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 343
22. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 1.1
23. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, (भाग–2), पृ० 260–261
24. आचार्य, नरेन्द्र देव, **बौद्ध धर्म–दर्शन**, पृ० 23
25. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 7/15–16
26. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, (भाग–2), पृ० 304–305
27. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ० 149–50
28. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, **(भाग–2)**, पृ० 226
29. **नन्दिसूत्र**, 1/12
30. **अंगुतर निकाय**, 2/27
31. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, **(भाग–2)**, पृ० 83–84
32. सिंह, महेन्द्रनाथ, **धम्मपद**, पृ० 120–21

33. मिश्र, जगदीशचन्द्र, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 337
34. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 281
35. **वही**, पृ० 235
36. **वही**, पृ० 236
37. टिटस, हेराल्ड एच०, **एथिक्स फॉर टूडे**, पृ० 508
38. मिश्र, हृदय नारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, **नीतिशास्त्र की भूमिका**, पृ० 380
39. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 265
40. सिंह, महेन्द्र नाथ, **धम्मपद**, पृ० 122
41. **तत्त्वार्थ सूत्र**, 1.1
42. **गीता**, 2:47
43. **गीता**, 4:37
44. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ० 120
45. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, भाग-2, पृ० 83
46. **वही**, पृ० 92-93
47. **वही**, पृ० 94
48. सिन्हा, हरेन्द्रप्रसाद, **भारतीय दर्शन की रूपरेखा**, पृ० 198
49. सिंह, महेन्द्रनाथ, **धम्मपद**, पृ० 76
50. राधाकृष्णन, एस०, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 235
51. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, **(भाग-2)**, पृ० 63-64
52. मिश्र, हृदयनारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, **नीतिशास्त्र की भूमिका**, पृ० 378-79
53. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, **(भाग-2)**, पृ० 130-31
54. मिश्र हृदयनारायण एवं अवस्थी, जमुना प्रसाद, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 411
55. जैन, सागरमल, **पूर्वोद्धृत**, **(भाग-2)**, पृ० 309
56. गिरि, रघुनाथ, **आचारशास्त्र (भारतीय एवं पाश्चात्य)**, पृ० 69
57. लाल, बसन्त कुमार, **समकालीन भारतीय दर्शन (भाग-1)**, पृ० 171-172
58. **वही**, पृ० 172
59. पाठक, दिवाकर, **भारतीय नीतिशास्त्र**, पृ० 138-142
60. **वही**, पृ० 143-151
61. लाल, बसन्त कुमार, **समकालीन भारतीय दर्शन (भाग-1)**, पृ० 108-114
62. पाठक, दिवाकर, **पूर्वोद्धृत**, पृ० 161-170